PUNE RESEARCH TIMES ISSN 2456-0960
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF CONTEMPORARY STUDIES VOL 5, ISSUE 1

रामदरश मिश्र की दो गजलों का आस्वादपरक परिचय

डॉ. भरत अ. पटेल
हिन्दी विभागाध्यक्ष
विजयनगर आर्ट्स कॉलेज, विजयनगर,
जि. साबरकांठा. गुजरात भारत

रामदरश मिश्र बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं | उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, यात्रा-वृत्तांत, आत्मकथा, संस्मरण, निबन्ध आदि विधाओं पर सफलतापूर्वक अपनी कलम चलायी है | पर उन्हें एक सशक्त कवि और मँजे हुए कथाकार के रूप में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है | मिश्र जी एक ऐसे प्रगतिशील कवि हैं, जिन्हों ने अपनी गहरी संवेदनाओं को सहज, मार्मिक और निश्छल अभिव्यक्ति दी है | पानी की प्राचीरों में बसे डुमरी गाँव को पढ़ाई और नौकरी के लिए छोडना पड़ा | वे अनेक शहरों में बसते-बिछड़ते रहे | प्रकृति की गोद गँवा चुके और यांत्रिक युग की जटिलतावाले आधुनिक शहरों में जीने को अभिशप्त कवि गहरी संवेदना से अंपृक्त हैं | उनकी रचनाओं में ग्राम्य परिवेश, शहरों की यांत्रिकता और अमानवीयता तथा व्यापक जीवनानुभवों का सत्य मार्मिकता के साथ उजागर हुआ है | ' पक गई है धूप ' नामक काव्य-संग्रह की भूमिका में वे स्वयं लिखते हैं -"मैंने अपनी इन कविताओं में अपने परिवेश को, जी कर प्राप्त किये गए अनुभव-सत्यों को परिवेश के ही बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया है | मेरे अनुभवों की यात्रा अत्यन्त अंतरंग स्व से लेकर बृहत्तर सामाजिक यथार्थ तक है, मन की एकान्त सौंदर्य-प्रतीतियों से लेकर सामाजिक विघटन, मूल्य-मूढ़ता और मानव यातना की उद्विग्नताओं तक है, धूप की तरह एक फूल से लेकर आकाश के आंदोलित विस्तार तक है | " [१]

रामदरश मिश्र का काव्य-संसार कुछ इस प्रकार है -

१.पथ के गीत २. बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ ३. पक गई है धूप ४. कंधे पर सूरज ५. दिन एक नदी बन गया ६. जुलूस कहाँ जा रहा है ७. मेरे प्रिय गीत ८. बाजार को निकले हैं लोग (गजल-संग्रह) ९. हँसी ओठ पर, आँखें नम हैं (गजल-संग्रह) १०.आम के पत्ते, तू ही बता ए जिंदगी (गजल-संग्रह) ११. रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ १२. आग कुछ नहीं बोलती १३. शब्द सेतु १४. बारिश में भीगते बच्चे १५. ऐसे में जब कभी आदि | मिश्र जी का ५१ गजलों का एक संग्रह २०१० में प्रकाशित हुआ -

इसकी भूमिका में मिश्र जी ने लिखा है - ' ये (गजलें) कैसी हैं इसकी पहचान तो पाठक करेंगे, बाकी मेरी तो कोशिश रही है कि बोलचाल की भाषा में अपने और परिवेश के सुख-दु:ख और समय के सच को स्वर दे सकूँ | गजल पर अपने अधिकार का दावा न कल किया था न आज कर रहा हूँ | ' [२] इस कथन में कवि की नम्रता के दर्शन होते हैं | बाकी इतनी संख्या और इतनी उत्कृष्ट गजलें देने के बाद उनका गजल लिखने पर अधिकार बनता ही है | उनकी दो लोकप्रिय गजलों का आस्वादपरक परिचय कराने का मेरा विनम्र प्रयास है | सर्वप्रथम उनकी ' बस्तियाँ ' नामक गजल प्रस्तुत है -

' बस्तियाँ '

इस हाल में जाने न कैसे रह रहीं ये बस्तियाँ,
सुनता नहीं ऊपर कोई, कुछ कह रहीं ये बस्तियाँ |

रोटी नहीं, पानी नहीं, अपने नहीं, सपने नहीं,
वादे सियासत के कभी से सह रहीं ये बस्तियाँ |

गर एक चिंगारी उठी तो ये धधक कर जल उठीं,
यदि टूट कर पानी गिरा तो बह रहीं ये बस्तियाँ |

कोई सहारा है नहीं, मासूम लावारिस हैं ये,
हैं लड़खड़ा कर उठ रहीं फिर ढर रहीं ये बस्तियाँ |

ख़ामोश-सी लगतीं मगर विस्फोट होगा एक दिन,
ज्वालामुखी-सी खुद के अंदर दहक रहीं ये बस्तियाँ | [३]

युगचेता साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों को, सामाजिक यथार्थ को अपनी रचनाओं में उकेरता है | रामदरश मिश्र समाजवादी विचारधारा के कवि हैं | अत: उनकी कविता में सामाजिक प्रतिबद्धता के दर्शन होते हैं | ' बस्तियाँ ' नामक गजल में छोटे-बड़े शहरों की बस्तियों की वास्तविकता को संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति मिली है |

आज के इस युग में छोटे-बड़े शहर कोंक्रीट के जंगलों में तबदील होते जा रहे हैं | गगनचुंबी इमारतें, आलिशान मकान, लंबी-चौड़ी सड़कें, वैभवी कारें, बाग-बगीचे और फव्वारे तथा रात में रोशनी में जगमगाते शहर - ये सब विकसित और बदलते भारत को प्रमाणित करते हैं | नागरिकों का जीवन-स्तर काफी ऊँचा उठा दिखता है | ये सब होते हुए भी हर नगर के कोनों में बसी कच्ची बस्तियाँ हमारे समाज की कटु वास्तविकता है | इन बस्तियों में जीने वाले मनुष्य पशु से भी बदतर जीवन जीने को अभिशप्त हैं | जिन बस्तियों को देखकर सभ्य समाज के लोगों को घिन आती है, वहाँ वे कैसे रहते होंगे, कैसे जीते होंगे ! इस गजल का मत्ला देखिए -

' इस हाल में जाने न कैसे रह रहीं ये बस्तियाँ,

सुनता नहीं ऊपर कोई, कुछ कह रही ये बस्तियाँ | '

इन बस्तियों में लोग न जाने कैसे रह लेते हैं | ये बस्तियाँ अपने दु:ख-दर्द सुनाना चाहती हैं, पर प्रशासन के बहरे कान यह आर्तनाद सुन नहीं पाते | चींटी के पैरों में पहनी पायल की आवाज को सुननेवाला भगवान भी शायद उनकी चीख नहीं सुन पाता है |

जब हमारे देश में कोई विदेशी मेहमान आते हैं, तब मुलाकाती शहरों को साफ-सुथरा कर दिया जाता है, रंग-बिरंगी रोशनी से स्वर्ग सा दृश्य निर्मित किया जाता है | जिन सड़कों से विदेशी मेहमान गुजरनेवाले हो, वहाँ की बस्तियों को ढँक दिया जाता है | ताकि वहाँ की गरीबी, गंदगी वे देख न पाये | ये बस्तियाँ मानो शहर रूपी यौवना के गोरे चिकने शरीर पर उठा ऐसा फोड़ा है, जिससे मवाद बहता है | इसका इलाज नहीं किया जाता, उसे ढँकने की कोशिश की जाती है -

' रोटी नहीं, पानी नहीं, अपने नहीं, सपने नहीं,

वादे सियासत के कभी से सह रही ये बस्तियाँ | '

कहा जाता है कि जल ही जीवन है | रोटी, कपड़ा और मकान मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं | इन बस्तीवालों को पीने का शुद्ध पानी मयस्सर नहीं होता, पेट की आग बुझाने को दो जून की रोटी नहीं मिलती | उनका कोई अपना नहीं है जो उनकी बात सुने, उनकी मदद करे | अच्छे भोजन और आवास का सपना देखना पाप है | यहाँ मैं मिश्र जी की ही एक कविता की पंक्तियों को उद् धृत किए बिना नहीं रह सकता -

"हाय लोकराम बेमौत मर गया कमबख्त

तुझे किसने कहा था

कि फुटपाथ पर सोकर एक बड़ा-सा सपना देख

जानता नहीं था कि यह एक सामाजिक अपराध है | " [४]

इस प्रकार बस्तीवालों को सपने देखने का भी अधिकार नहीं है | अभावों में जी रहे इन गरीबों के मुँह में रोटी की जगह भाषण ठूँस दिये जाते हैं | चुनाव से पहले वादे किए जाते हैं

कि आप की पानी, बिजली, मकान, रोजगार आदि सारी आवश्यकताएँ पूरी कर दी जाएगी | चुनाव आते रहते हैं, वादे दोहराए जाते हैं, लेकिन समस्याएँ वैसी की वैसी मुँह बाए खड़ी रहती हैं |

ये कच्ची बस्तियाँ कुदरती प्रकोप का सबसे पहले शिकार बन जाती हैं | अतिवृष्टि होती है तो ये बह जाती हैं, कहीं आग लगती है तो राख हो जाती हैं -

गर एक चिंगारी उठी तो ये धधक कर जल उठीं,
यदि टूट कर पानी गिरा तो बह रहीं ये बस्तियाँ |

कोई सहारा है नहीं, मासूम लावारिस हैं ये,
हैं लड़खड़ा कर उठ रहीं फिर ढर रहीं ये बस्तियाँ |

पक्के और कानूनन मकान न होने के कारण सरकार की तरफ से कोई सहायता प्राप्त नहीं होती | इनकी मदद करनेवाला कोई नहीं होता | लावारिस सी ये बस्तियाँ अगनपाखी (फीनिक्स पक्षी) की तरह अपने बलबूते पर फिर खड़ी होती हैं, फिर किसी आपदा में ढह जाती है |

ख़ामोश-सी लगतीं मगर विस्फोट होगा एक दिन,
ज्वालामुखी-सी खुद के अंदर दहक रहीं ये बस्तियाँ |

शायर कहता है कि हे दुनियावालों, आज भले ही तुम इनकी उपेक्षा कर लो, आज भले ही ये तुम्हें खामोश सी लगती हैं, लेकिन भीतर ही भीतर व्यथा और आक्रोश का ज्वालामुखी सुलग रहा है ; जो एक दिन विद्रोह के रूप में फट सकता है | भूखे लोगों का जठराग्नि जब ज्वालामुखी की तरह फटेगा तो शासन के तख्त पलट जाएँगे, बड़ी बड़ी हवेलियाँ खँड़हर बन जाएगी, छोटी-बड़ी रियासतें तहस-नहस हो जाएगी | इतिहास इसका गवाह है | मिश्र जी ने बस्तियों की व्यथा-कथा, दु:ख-दर्द को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है | साथ ही शासकों और प्रशासन को सावधान कर दिया है कि अधिक उपेक्षा करोगे तो मिट्टी में मिल जाओगे |

मिश्र जी की दूसरी गजल है - ' बनाया है मैंने ये घर धीरे धीरे ' | यह गजल आत्म-केन्द्रित है, अर्थात शायर ने अपनी जिंदगी की दास्तान को, अपने स्वभाव और व्यक्तित्व को उजागर करने का प्रयास किया है -

PUNE RESEARCH TIMES ISSN 2456-0960
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF CONTEMPORARY STUDIES VOL 5, ISSUE 1

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे,
खुले मेरे ख़्वाबों के पर धीरे-धीरे।

किसी को गिराया न ख़ुद को उछाला,
कटा ज़िंदगी का सफ़र धीरे-धीरे।

जहाँ आप पहुँचे छलांगे लगाकर,
वहाँ मैं भी आया मगर धीरे-धीरे।

पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी,
उठाता गया यूँ ही सर धीरे-धीरे।

न हँस कर न रोकर किसी में उडेला,
पिया खुद ही अपना ज़हर धीरे-धीरे।

गिरा मैं कहीं तो अकेले में रोया,
गया दर्द से घाव भर धीरे-धीरे।

ज़मीं खेत की साथ लेकर चला था,
उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे।

मिला क्या न मुझको ए दुनिया तुम्हारी,
मोहब्बत मिली, मगर धीरे-धीरे। [५]

मिश्र जी कहते हैं कि मैंने अपनी जिंदगी को धीरे-धीरे सँजोया है | तिनका तिनका जोड़कर नीड़ का निर्माण किया है | मेरी जिंदगी की रफ्तार धीमी और साहजिक है | मैंने एक आम आदमी की तरह ख्वाब देखे हैं और उन्हें साकार करने की चेष्टा की है | मेरी जीवन-धारा शान्त और गंभीर रूप से बहती रही है | मैंने किसी से स्पर्धा नहीं की है, किसी

को गिराकर आगे बढ़ जाने की दुर्वृत्ति कभी नहीं रही | जिंदगी का सफर धीरे धीरे कटता रहा -

‘ किसी को गिराया न ख़ुद को उछाला,
कटा ज़िंदगी का सफ़र धीरे-धीरे।

जहाँ आप पहुँचे छलांगे लगाकर,
वहाँ मैं भी आया मगर धीरे-धीरे। ’

जहाँ लोग शॉर्ट कट रास्ता अपनाकर आगे बढ़ जाने की कोशिश करते हैं, वहाँ मैं भी पहुँचा, मगर साहजिक गति से | उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले के पानी की प्राचीरों के बीच बसे हुए डुमरी गाँव में जन्मे और बड़े हुए मिश्र जी के सामने बड़ी-बड़ी महत्त्वकांक्षाएँ नहीं थी | फिर भी अनेकविध संघर्षो से जूझते हुए गिरते-उठते रास्ता बनता गया, जीवन चलता रहा -

‘ पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी,
उठाता गया यूँ ही सर धीरे-धीरे।

न हँस कर न रोकर किसी में उडैला,
पिया खुद ही अपना ज़हर धीरे-धीरे। ’

कॉलेज में प्राध्यापक की नौकरी करने के लिए मिश्र जी को गुजरात के अहमदाबाद जैसे शहरों में बसना पड़ा | कुछ वर्षों बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप नियुक्त हुए | इस प्रकार अहमदाबाद और दिल्ली जैसे महानगरों में बसने के बावजूद वे गाँव की मिट्टी की सुगंध को लगातार महसूस करते रहे, ग्राम्य-जीवन के अनुभवों को साहित्य में अभिव्यक्त करते रहे हैं | फिर भी गाँव की जमीन में धीरे-धीरे कब शहर उग निकला पता ही नहीं चला -

‘ ज़मीं खेत की साथ लेकर चला था,
उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे । ’

इस प्रकार मिश्र जी ने अपने जीवनरूपी सफर को इस गजल में जीवंत कर दिखाया है | धीरे-धीरे ही सही वे आज हिन्दी साहित्य जगत में एक सशक्त कवि, मँजे हुए कथाकार, विद्वान आलोचक के रूप में सर्वस्वीकृत हैं | इस गजल में मानो रामदरश मिश्र का जीवन और व्यक्तित्व सजीव हो उठा है |

संदर्भ-संकेत :

१. ' पक गई है धूप ', (काव्य-संग्रह की भूमिका से), रामदरश मिश्र |
२. ' ५१ गजलें ' (गजल-संग्रह की भूमिका से), www.hindisamay.com
३. www.hindisamay.com
४. हिन्दी की श्रेष्ठ प्रतिनिधि कविताएँ, पृष्ठ - ३६ |
५. रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ, पृष्ठ - ७१, संपादक: रघुवीर चौधरी |